रसराज श्रीकृष्ण

कृष्णकृपामूर्ति
श्री श्रीमद्
ए. सी. भक्तिवेदान्त
स्वामी प्रभुपाद
संस्थापकाचार्य-अन्तर्राष्ट्रीय
कृष्णभावनामृत संघ



रसराज श्रीकृष्ण

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य : अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ



भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

इस ग्रंथ की विषयवस्तु में जिज्ञासु पाठकगण अपने निकटस्थ किसी भी इस्कॉन केन्द्र से अथवा निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करने के लिए आमंत्रित हैं :

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
हरे कृष्ण धाम, जुहू
मुंबई ४०० ०४९

वेब / ई-मेल :
www.indiabbt.com
admin@indiabbt.com

Kṛṣṇa, the Reservoir of Pleasure (Hindi)

1st printing : 5,000 copies
2nd to 10th printings : 3,85,000 copies
11th Printing, March 2013 : 1,00,000 copies

ISBN : 978-93-82716-51-8

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा
प्रकाशित एवं मुद्रित।

A3PP

अनुक्रमणिका



रसराज श्रीकृष्ण



कृष्ण--यह शब्द दिव्य है। कृष्ण का अर्थ है परम आनन्द। हम सभी लोग आनन्द की खोज में हैं, पर हम यह नहीं जानते कि सच्चा आनन्द किस प्रकार खोजा जा सकता है। जीवन के प्रति भौतिकतावादी दृष्टिकोण रखकर, हम अपनी इच्छाओं को पूरा करने

में हर पग पर निराशा का सामना करते हैं, क्योंकि जिस वास्तविक स्तर पर पहुँचकर वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है, उसकी हमें कोई जानकारी नहीं है। सच्चा आनन्द प्राप्त करने के लिए सबसे पहले हमें यह समझना होगा कि हम यह शरीर नहीं हैं बल्कि चेतना हैं। सिर्फ चेतना ही नहीं क्योंकि चेतना तो हमारी वास्तविक पहचान का लक्षण मात्र है : हम तो विशुद्ध आत्मा हैं, जो इस भौतिक शरीर में प्रविष्ट हो गया है। आधुनिक भौतिक विज्ञान इस बात पर कोई महत्त्व नहीं डालता; इसलिए कभी-कभी वैज्ञानिक आत्मा को समझने में भूल कर बैठते हैं और भ्रमित हो जाते हैं। किन्तु आत्मा एक सत्य है, जिसे चेतना की उपस्थिति के द्वारा कोई भी समझ सकता है। एक बच्चा भी इस बात को समझ सकता है कि प्राणियों की चेतना आत्मा के अस्तित्व का एक लक्षण है।

श्रीमद्भगवद्गीता (भगवान का गीत) से हम जो पूरी प्रक्रिया सीखने का प्रयत्न कर रहे हैं, वह यही है कि हम किस प्रकार अपने आपको चेतना के स्तर तक ला सकते हैं। यदि हम चेतना के उस स्तर तक पहुँच गए, तो फिर हमें इस शारीरिक चेतना के स्तर पर वापस नहीं धकेला जा सकता है और इस वर्तमान शरीर के नष्ट होने पर हम भौतिक विकारों से भी मुक्त हो जायेंगे; हमारा आध्यात्मिक जीवन पुनर्जीवित हो उठेगा और उसका अन्तिम परिणाम यह होगा कि इस शरीर को छोड़ने के बाद जो हमारा अगला जन्म होगा, वह पूरी तरह से आध्यात्मिक और शाश्वत होगा। आत्मा, जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं, शाश्वत है।

इस शरीर के नष्ट होने पर भी चेतना नष्ट नहीं होती। वरन् चेतना दूसरे प्रकार के किसी शरीर में प्रविष्ट हो जाती है और हम फिर से भौतिक जीवन की अवधारणा से परिचित होने लगते हैं। इस बात को

श्रीमद्भगवद्गीता में भी समझाया गया है। मृत्यु के समय यदि हमारी चेतना पूर्ण विशुद्ध है, तो हम इस बात के प्रति पूर्ण आश्वस्त हो सकते हैं कि हमारा अगला जीवन भौतिक नहीं वरन् आध्यात्मिक होगा। यदि मृत्यु के समय हमारी चेतना शुद्ध नहीं हुई, तो इस शरीर को छोड़ने के बाद हमें पुनः कोई भौतिक शरीर प्राप्त करना होगा। यह प्रक्रिया निरन्तर चल रही है। यह प्रकृति का नियम है।

अभी हमारे पास सीमित शरीर है। जो शरीर हम देख रहे हैं, वह स्थूल है। यह एक कमीज और कोट के समान है। जिस प्रकार कोट के नीचे कमीज और कमीज के नीचे शरीर होता है, उसी प्रकार विशुद्ध आत्मा भी कमीज और कोट से ढकी हुई है। मस्तिष्क, बुद्धि तथा मिथ्याभिमान, ये वस्त्र हैं। मिथ्याभिमान का अर्थ है यह गलत धारणा कि हम केवल पदार्थ हैं और इस भौतिक संसार के उत्पादन हैं। हमारी यह भ्रान्त धारणा ही हमारे अस्तित्व को सीमित कर देती है। उदाहरण के लिए, मेरा जन्म भारतवर्ष में हुआ है इसलिए मैं अपने आपको भारतीय समझता हूँ। अमेरिका में जन्म लेने वाला अपने को अमरीकी समझता है, किन्तु शुद्ध आत्मा के नाते हम में से न तो कोई भारतीय है और न कोई अमरीकी। हम तो शुद्ध आत्मा हैं। बाकी ये सब तो उपाधियाँ मात्र हैं। अमरीकी, भारतीय, जर्मन, इंग्लिश, कुत्ता, बिल्ली, कीड़े-मकोड़े, स्त्री-पुरुष : ये सब तो मात्र उपाधियाँ हैं। आध्यात्मिक चेतना में हम इन सभी उपाधियों से भी मुक्त हो जाते हैं। यह मुक्ति तब प्राप्त होती है, जब हम निरंतर उस परमात्मा श्रीकृष्ण के संपर्क में रहते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ का यही उद्देश्य है कि हम सबको श्रीकृष्ण के निरन्तर संपर्क में रखना। श्रीकृष्ण हमारे अनन्य साथी बन सकते हैं क्योंकि वे सर्वशक्तिमान हैं। इसलिए अपने शब्दों

के माध्यम से वे हम से पूर्ण सान्निध्य बनाए रख सकते हैं। उनके शब्द तथा वे स्वयं भिन्न नहीं हैं। इसीको सर्वशक्तिमान कहते हैं। सर्वशक्तिमान का अर्थ है, उन से सम्बन्धित हर चीज में उनके समान शक्ति है। उदाहरण के लिए, इस भौतिक जगत में यदि हम प्यासे हैं और हमें पानी चाहिए, तो केवल "पानी-पानी" दोहराने से हमारी प्यास नहीं बुझेगी, क्योंकि यह शब्द वास्तविक पानी के समान शक्तिमान नहीं है। हमें असली रूप में पानी चाहिए; तभी हमारी प्यास बुझेगी। किन्तु उस दिव्य, निरपेक्ष जगत में ऐसा कोई भेद नहीं है। श्रीकृष्ण का नाम, श्रीकृष्ण के गुण और श्रीकृष्ण का शब्द—सभी श्रीकृष्ण हैं और एक-सा संतोष प्रदान करते हैं।

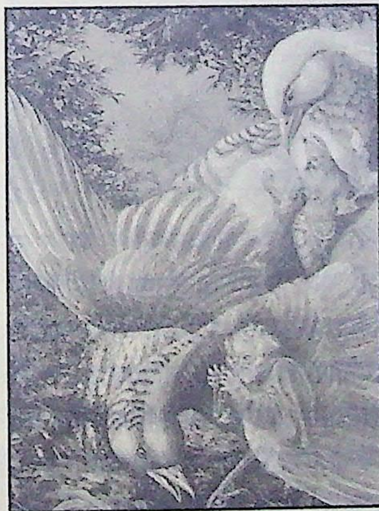
कुछ लोग इस बात को लेकर विवाद करते हैं कि अर्जुन कृष्ण से बात कर रहा था क्योंकि श्रीकृष्ण अर्जुन के समक्ष साक्षात् उपस्थित थे; जबकि मेरे समय में श्रीकृष्ण उपस्थित नहीं हैं। अत: भला मैं



किस प्रकार मार्गदर्शन प्राप्त कर सकता हूँ? लेकिन आज भी कृष्ण भगवद्गीता में अपने शब्दों के माध्यम से उपस्थित हैं। भारतवर्ष में श्रीमद् भगवद्गीता या श्रीमद्भागवतम् पर प्रवचन प्रारम्भ करने के पूर्व हम फूलों से या किसी अन्य आवश्यक सामग्री से इन ग्रंथों की पूजा करते हैं। सिख धर्म में भी यद्यपि सिख

किसी मूर्ति की पूजा नहीं करते, पर वे अपनी पुस्तक ग्रंथसाहिब की पूजा अवश्य करते हैं। कदाचित् आप में से कुछ लोग सिख समुदाय से परिचित हैं। वे इस ग्रंथसाहिब की पूजा करते हैं। इसी प्रकार मुस्लिम कुरान और क्रिश्चियन बाइबिल की पूजा करते हैं। यह सत्य है कि आज भी ईसा मसीह अपने शब्दों के रूप में उपस्थित हैं और इसी प्रकार श्रीकृष्ण भी अपने शब्दों के रूप में उपस्थित हैं।

ये महान् व्यक्तित्व, ईश्वर अथवा ईश्वर के पुत्र, जो उस दिव्य जगत से पृथ्वी पर आते हैं, इस भौतिक संसार की बुराइयों से प्रभावित नहीं होते और अपनी दिव्य पहचान को निरन्तर बनाये रखते हैं। यही उनकी सर्वशक्तिमत्ता है। हम यह कहते रहते हैं कि भगवान् सर्वशक्तिमान हैं। सर्वशक्तिमत्ता का अर्थ यह है कि वे अपने नाम, रूप, गुण, लीलाओं और आदेशों से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं हैं। इसलिए श्रीमद्भगवद्गीता पर चर्चा करना स्वयं श्रीकृष्ण के साथ बात करने के समान ही है। श्रीकृष्ण आपके हृदय में उपस्थित हैं और मेरे हृदय में भी। *ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*—भगवान् सबके हृदय में विद्यमान हैं। वे हमसे दूर नहीं हैं। वे उपस्थित हैं। वे इतने मैत्रीपूर्ण हैं कि हमारे बार बार बदलते जीवन-क्रम में भी वे हमारे साथ रहते हैं। वे केवल इस बात की प्रतीक्षा



कर रहे हैं कि हम कब उनकी ओर मुड़कर देखेंगे। वे इतने दयालु हैं कि यद्यपि हम उनको भूल सकते हैं, पर वे हमें कभी नहीं भूलते। जैसे कि पुत्र अपने पिता को भूल सकता है, पर पिता अपने पुत्र को कभी नहीं भूलता। ठीक उसी प्रकार भगवान्, जोकि हम सब प्राणियों के मूल पिता हैं, हमें कभी नहीं छोड़ते। हमारे शरीर अलग-अलग हो सकते हैं पर वे सब कमीज-कोट के समान हैं। हमारी वास्तविक पहचान से उनका कोई संबंध नहीं। हमारी सही पहचान यह है कि हम सब शुद्ध आत्मा हैं और यह आत्मा उस परमात्मा का ही एक अंश है।

इस चराचर जगत में जीवों की चौरासी लाख योनियाँ हैं। जीव-विज्ञान और मानव-विज्ञान के ज्ञाता भी इन योनियों की सही-सही गिनती नहीं कर सकते, किन्तु प्रामाणिक शास्त्रों से हमें इस बात की जानकारी मिलती है। इन योनियों में से चार लाख योनियाँ मनुष्यों की हैं और अस्सी लाख अन्य योनियाँ हैं। भगवान् श्रीकृष्ण यह दावा करते हैं कि इन योनियों में जन्म लेने वाले सभी जीव चाहे वे जानवर हो, साँप हो, मनुष्य हो या देवता हो या कुछ और हो, वे सभी वास्तव में उनके पुत्र हैं। पिता बीज प्रदान करता है और माता इसे ग्रहण करती है। माँ के शरीरानुसार नवीन शरीर का निर्माण होता है। जब शरीर का निर्माण पूरी तरह से हो जाता है, तो वह माँ के शरीर से बाहर आ जाता है, चाहे बिल्ली से, कुत्ते से अथवा मनुष्य से। पीढ़ियों का यही क्रम है। पिता बीज प्रदान करता है और वह दो प्रकार के तत्त्वों से मिलकर माँ के गर्भ में जाता है और पहली रात को शरीर मटर के दाने के आकार में निर्मित हो जाता है। और फिर धीरे-धीरे उसका विकास होता है। शरीर में नौ छिद्र हैं जो विकसित होते हैं— दो कान, दो आँखें, नाक, मुँह, नाभि, लिंग और मलद्वार।

जीव यह शरीर अपने पूर्व कर्मों के आधार पर ही सुख भोगने के लिए या कष्ट पाने के लिए प्राप्त करता है। जीवन और मृत्यु का यही क्रम है। इस जीवन की समाप्ति पर जीव मर जाता है और फिर किसी माँ के गर्भाशय में प्रविष्ट हो जाता है। तब फिर एक नयी योनि का शरीर बाहर आता है। यही पुनर्जन्म का क्रम है।



हमें चाहिए कि हम खूब परिश्रम करें ताकि जन्म-मृत्यु और योनि-परिवर्तन के इस चक्र से मुक्त हो सकें। मानव-जीवन को ही यह परमाधिकार प्राप्त है। जीवन और मृत्यु से उत्पन्न योनियों के इस निरंतर परिवर्तन को हम रोक सकते हैं। हम पुनः अपने वास्तविक आत्मिक-स्वरूप को प्राप्त करके आनन्द और पूर्ण ज्ञान से भरा शाश्वत जीवन जी सकते हैं। विकास अथवा प्रकृति का सही उद्देश्य यही है। इसलिए हमें चाहिए कि हम इसे व्यर्थ न जाने दें।

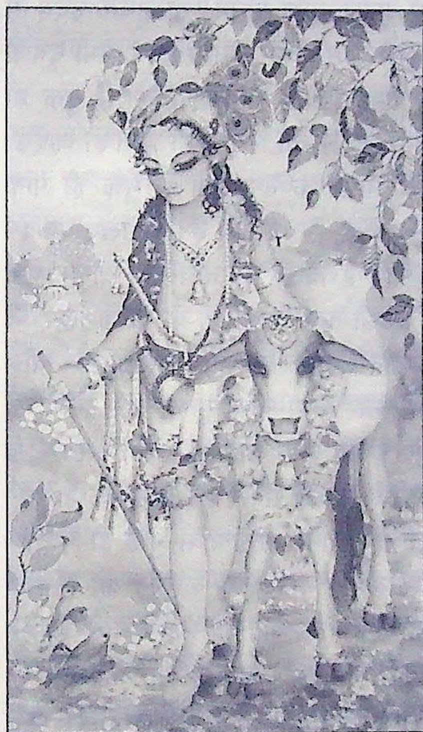
जैसे ही हम भगवान् के इन पवित्र नामों का उच्चारण और श्रवण आरम्भ करते हैं, वैसे ही हमारे लिए मुक्ति के द्वार खुलने लगते हैं। मैं इस बात को विशेष रूप से बताना चाहता हूँ कि भगवान् के इन पवित्र नामों का जप-कीर्तन करना :

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

तथा श्रीमद्भगवद्गीता में बताये गये सत्य को सुनना, वह श्रीकृष्ण के साथ शारीरिक संग रखने के समान ही है। इस बात को गीता में स्पष्ट रूप से बताया गया है। यह प्रक्रिया कीर्तन कहलाती है। यदि कोई व्यक्ति इन नामों का अर्थ या भाषा न भी समझे, तो भी इनको सुनने मात्र से वह थोड़ा धार्मिक हो जाता है। इसमें इतनी शक्ति है कि उसका जीवन पवित्र होने लगता है भले ही वह उसका अर्थ न समझता हो। श्रीकृष्ण से सम्बन्धित दो प्रमुख ग्रंथ उपलब्ध हैं। एक ग्रंथ का नाम है श्रीमद्भगवद्गीता जो कि स्वयं श्रीकृष्ण के द्वारा बोली गई है। दूसरा ग्रंथ है श्रीमद्भागवतम् जिसमें श्रीकृष्ण के बारे में कहा गया है। इस तरह दो प्रकार की कृष्ण-कथाएँ उपलब्ध हैं और दोनों ही श्रीकृष्ण से सम्बन्धित होने के कारण समान रूप से शक्तिशाली और प्रभावकारी हैं।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को भगवद्गीता का ज्ञान कुरुक्षेत्र के युद्ध-स्थल में दिया था, इसलिए कुछ लोग यह प्रश्न करते हैं कि हमें युद्धस्थल से क्या लेना देना है। हमारा उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। हम तो आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। हमें युद्धस्थल से क्या करना है? क्योंकि श्रीकृष्ण युद्धस्थल में स्वयं उपस्थित थे इसलिए वह सारा युद्धस्थल ही कृष्णमय हो गया था। जिस प्रकार किसी धातु में विद्युत् धारा प्रवाहित होने पर सारी धातु ही विद्युत्मय हो जाती है,

ठीक उसी प्रकार जब श्रीकृष्ण किसी विषय में रुचि लेते हैं, तो वह सारा विषय कृष्णमय हो जाता है। यदि ऐसा न होता तो कुरूक्षेत्र के युद्धस्थल की चर्चा आवश्यक नहीं थी। यही हैं उनकी सर्वशक्तिमत्ता।



भगवान् की इस सर्व-शक्तिमत्ता का उल्लेख श्रीमद्भागवतम् में भी मिलता है। कई कृष्ण-कथाएँ उपलब्ध हैं। वैदिक साहित्य इन कथाओं से भरा हुआ है। वेद का अर्थ ही यह है कि वे कृष्ण-कथा हैं। यद्यपि वेद और दूसरे शास्त्रों को देखने से लगता है कि वे कृष्ण-कथा नहीं बल्कि कुछ और हैं, लेकिन वास्तव में वेदों के सहित हमारे सभी शास्त्रों की रचना केवल कृष्ण-कथा के लिए ही हुई है। अब प्रश्न यह उठता है कि भला कृष्ण-कथा सुनने से क्या लाभ होगा? उत्तर में कहा जा सकता है कि कृष्ण-कथा विशुद्ध दिव्य तरंग है जिसके सुनने से हमारी चेतना आध्यात्मिकतामय बनती है।

अनेक जन्मों की इस प्रक्रिया के दौरान भौतिक दूषण के कारण हमारे हृदय में कई अपवित्र चीजें जमा हो गई हैं। अनेक जन्मों से—सिर्फ यह जन्म में ही नहीं अपितु पूर्व जन्मों के फलस्वरूप भी ऐसा हो रहा है। पर अगर हम कृष्ण-कथा सुनेंगे, तो हमारे हृदय में एकत्रित गंदगी स्वतः ही धुल जाएगी और हमारा हृदय सभी दूषणों से शुद्ध हो जाएगा। और ज्योंही जीव भौतिक गंदगी से मुक्त हो जाएगा, त्योंही हम शुद्ध आत्म-चेतना की स्थिति को प्राप्त हो जाएँगे।

हमारे साथ जुड़ी झूठी सांसारिक उपाधियों से मुक्त हो पाना बहुत कठिन है। उदाहरण के लिए, मैं भारतीय हूँ। मेरे लिए एकदम से यह सोच पाना आसान नहीं है कि मैं भारतीय नहीं बल्कि एक पवित्र (विशुद्ध) आत्मा हूँ। उसी तरह किसी भी व्यक्ति के लिए इन शारीरिक उपाधियों की पहचान से मुक्त हो पाना कोई आसान चीज नहीं है। फिर भी यदि हम निरन्तर कृष्ण-कथा सुनना जारी रखेंगे, तो यह बहुत आसान हो जाएगा। यदि आप चाहें तो प्रयोग करके देख सकते हैं। प्रयोग करने पर ही आप देख सकेंगे कि कृष्ण-कथा सुनने में आप इन सभी उपाधियों से कितनी आसानी से मुक्त हो गए हैं। निस्सन्देह, एकदम से मस्तिष्क में जमा कूड़े-करकट को निकाल फेंकना सम्भव नहीं है, फिर भी हम इस बात को स्पष्ट रूप से अनुभव करने लगेंगे कि भौतिक प्रकृति का प्रभाव कम होने लगा है।

भौतिक प्रकृति तीन प्रकार से काम करती है—सत्त्व, रज और तम। तमोगुण से युक्त जीवन तो एकदम निराशाजनक है। रजोगुण भौतिक है। जो व्यक्ति रजोगुण से प्रभावित है वह इस भौतिक जगत के झूठे आनन्द को भोगना चाहता है। सत्य से अपरिचित होने के कारण वह अपने शरीरकी सारी शक्ति निचोडकर भौतिक भोगों को भोगना चाहता है। इसी को रजोगुण कहते हैं और जो तमोगुण से

प्रभावित हैं, उनमें न तो रजोगुण के कोई लक्षण होते हैं और न ही सत्त्वगुण के। वे जीवन के सबसे गहरे अन्धकार में डूबे रहते हैं। यदि कोई सत्त्वगुण की स्थिति में है, तो कम से कम वह सैद्धान्तिक रूप से यह समझ सकता है कि वह कौन है, यह विश्व क्या है, ईश्वर क्या है और उससे हमारा क्या सम्बन्ध है ? इसी को सत्त्वगुण कहते हैं।

कृष्ण-कथा सुनने से हम तमोगुण तथा रजोगुण की स्थिति से मुक्त हो जाएँगे और सत्त्वगुण की स्थिति तक पहुँच जाएँगे। कम से कम, हम सही ज्ञान को प्राप्त कर सकेंगे कि वास्तव में हम क्या हैं ? तमोगुण से प्रभावित जीवन पशु जीवन के ही समान है। पशुजीवन कष्टों से भरा होता है, पर पशु यह नहीं जानता कि वह कष्ट भोग रहा है। उदाहरण के लिए सुअर को लीजिए। वैसे न्युयॉर्क में सुअर नहीं दिखते किन्तु भारत के गाँवों में सुअर देखे जाते हैं। कितना दुःखमय जीवन है उसका! गन्दे स्थान में रहना, विष्टा खाकर जीवन निर्वाह करना और सदैव गन्दा रहना। किन्तु विष्टा खाकर भी सुअर खुश रहता है और मादा सुअर के साथ निरंतर सहवास करता है और मोटा होता जाता है। इन्द्रिय-सुख, जो सुअर के लिए यौन सुख है, उसकी लालसा के कारण वह बहुत मोटा हो जाता है।

इसलिए हमें चाहिए कि हम सुअर की तरह झूठे तौर पर यह न सोचें कि हम सुखी हैं। दिन-रात कठोर परिश्रम करके और उसके बाद थोड़ा सा यौन सुख प्राप्त करके हम समझते हैं कि हम बहुत सुखी हैं। किन्तु यह वास्तविक सुख नहीं है। श्रीमद्‌भागवतम् में इस प्रकार के सुख को सुअर की खुशी के समान बताया गया है। मनुष्य का सुख सत्त्वगुण की स्थिति प्राप्त करने में है। यह स्थिति प्राप्त करने पर ही वह समझ सकता है कि वस्तुतः सच्चा सुख क्या है।

यदि हम नियमपूर्वक कृष्ण-कथा सुनेंगे, तो इसका परिणाम यह

होगा कि हमारे हृदय में जन्म-जन्मान्तर से एकत्रित गंदगी दूर हो जाएगी। वास्तव में, हम देखेंगे कि हम तमोगुण और रजोगुण से हटकर सत्त्वगुण की स्थिति को प्राप्त कर चुके हैं। वह स्थिति क्या है ?

सत्त्वगुण की स्थिति प्राप्त कर लेने के बाद हम जीवन की सभी परिस्थितियों में सुख का अनुभव करेंगे। हम कभी उदासी महसूस नहीं करेंगे। भगवद्गीता के अनुसार यह हमारी ब्रह्मभूत स्थिति (सत्त्वगुण की सर्वोच्च स्थिति) है। वेद हमें सिखाते हैं, हम पदार्थ नहीं, ब्रह्म हैं। *अहं ब्रह्मास्मि।* श्रीशंकराचार्य ने इस वेदवाक्य को सारे संसार में प्रचारित किया। हम पदार्थ नहीं हैं, हम ब्रह्म हैं, आत्मा हैं।

वास्तव में हमें जब आत्मिक बोध पूरी तरह से हो जाएगा, तब हमारे लक्षण बदलने लगेंगे। वे लक्षण क्या हैं ? जब व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक चेतना में स्थित होता है, तब वह न तो किसी भौतिक वस्तु की प्राप्ति की लालसा करेगा और न ही किसी वस्तु के खो जाने पर उसका शोक करेगा। शोक किसी हानि होने पर किया जाता है और लालसा किसी लाभ के लिए।

दो बिमारियाँ इस संसार की विशेषताएँ हैं—जो हमारे पास नहीं है, उसके लिए हम लालायित रहते हैं और सोचते हैं कि "अगर ये चीजें मुझे मिल जाएँ, तो मैं सुखी हो जाऊँगा। मेरे पास धन नहीं है पर यदि मुझे दस लाख डॉलर मिल जाएँ, तो मैं सुखी हो जाऊँगा।" और यदि हमारे पास दस लाख डॉलर हों और वे किसी प्रकार खो जाएँ तो हम रोना शुरू कर देंगे; "ओह! मैंने इसे खो दिया है!" जब हम धन कमाने के लिए बेचैन हो उठते हैं, तो वह भी दुःख ही है और जब हम नुकसान उठाते हैं, तो वह भी दुःख ही है। किन्तु यदि हम ब्रह्मभूत अवस्था में स्थित हैं, तो न ही हम लालायित होंगे, न ही दुखी होंगे। हम हर व्यक्ति और हर वस्तु को समदृष्टि से देखेंगे

और कठिन से कठिन समय में भी विचलित नहीं होंगे। इसी को सत्त्वगुण की स्थिति कहते हैं।

भागवतम् का अर्थ है ईश्वरीय-विज्ञान। यदि कोई इस ईश्वरीय-विज्ञान के अध्ययन के लिए दृढ़ प्रयास करे, तो वह ब्रह्मभूत की स्थिति को प्राप्त होगा। उस ब्रह्मभूत स्थिति को प्राप्त करने के बाद भी हमें कर्म करना होगा, क्योंकि यहाँ हमें कर्म करने की सलाह दी गई है। जब तक हमारे पास भौतिक शरीर है, हमें कर्म करना ही होगा। हम कर्म करना बंद नहीं कर सकते, यह संभव नहीं है। किन्तु कर्म करते हुए हमें यौगिक साधनों को अपनाना होगा और तब हमें कोई भी साधारण कर्म करने में, जो कि भाग्यवश या परिस्थितिवश हमें करना पड़ रहा है, कोई हानि नहीं होगी। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति को अपने व्यवसाय में झूठ बोले बिना काम न चले, ऐसा है। झूठ बोलना अच्छी बात नहीं है इसलिए सार यह है कि व्यापार ठीक प्रकार से नैतिकता के सिद्धांतो पर आधारित नहीं है और इसलिए व्यापार करना ही नहीं चाहिए। किन्तु भगवद्गीता में हमें यह निर्देश मिलता है कि हमें इसे छोड़ना नहीं चाहिए। यदि हम ऐसी परिस्थिति में फँस जाएँ जहाँ कि थोड़ा-सा अनुचित कार्य किए बिना हम अपनी जीविका नहीं कमा सकते हैं, तो हमें उस कार्य को छोड़ नहीं देना चाहिए, बल्कि हमें उस कर्म को पवित्र करने का प्रयत्न करना चाहिए। उसे पवित्र कैसे किया जा सकता है? उसको पवित्र तभी किया जा सकता है, जब हम उस कर्म के फल को स्वयं ग्रहण न करें और उसे ईश्वर को समर्पित कर दें।

सुकृत का अर्थ है, पुण्य कर्म (अच्छे कर्म) और *दुष्कृत* का अर्थ है, पाप कर्म (बुरे कर्म)। भौतिक स्तर पर हम पुण्यात्मा या

पापी हो सकते हैं। इस संसार में हम या तो पुण्यकर्म करते हैं या पापकर्म या फिर कुछ अच्छे और कुछ बुरे मिले-जुले कर्म करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण हमें एक बात की सलाह देते हैं कि हम जो भी कर्म करें वे ईश्वर के प्रति भक्ति और ज्ञान से करें। और वह ज्ञान क्या है? वह ज्ञान यह है कि हम सब परमात्मा के अंश हैं, या तो हम यह शरीर नहीं हैं। यदि मैं समझूँ कि मैं भारतीय हूँ या अमरीकी हूँ या यह हूँ, वह हूँ, तो इसका अर्थ होगा कि मैं अभी भौतिक स्तर पर ही हूँ। हमें अपने आपको अमरीकी और भारतीय न समझकर केवल शुद्ध आत्मा समझना चाहिए। मैं उस परम चेतना के अधीनस्थ चेतना हूँ। दूसरे शब्दों में हम सब ईश्वर के सेवक हैं। ईश्वर सर्वोच्च चेतना हैं और हम उनके सेवक हैं। अत: हमें यह समझना चाहिए कि अधीनस्थ का अर्थ है सेवक।

जहाँ तक हमारा भगवान् से सम्बन्ध है, साधारणतया हम उनका कार्य सेवक समझकर नहीं करते। कोई भी सेवक बनना नहीं चाहता, सभी स्वामी बनना चाहते हैं, क्योंकि सेवक बनना कोई शान की बात नहीं लगती। पर भगवान् का सेवक बनना बिल्कुल भिन्न है। कभी-कभी भगवान् का सेवक भगवान् का स्वामी बन जाता है।

जीव की वास्तविक स्थिति भगवान् के सेवक की ही है, परन्तु भगवद्गीता में हम देखते हैं कि सबके स्वामी श्रीकृष्ण अर्जुन के सेवक बन जाते हैं। अर्जुन रथ पर बैठा है और श्रीकृष्ण रथ चला रहे हैं। अर्जुन रथ का स्वामी नहीं है; किन्तु हमें अलौकिक सम्बन्धों की तुलना भौतिक तथा सांसारिक सम्बन्धों से नहीं करनी चाहिए। यद्यपि वे सारे सम्बन्ध जिसे हम इस संसार में अनुभव करते हैं, उस दिव्य जगत (आध्यात्मिक जगत) में भी विद्यमान हैं, पर वहाँ के सम्बन्ध इस संसार के सम्बन्धों की भाँति भौतिकता से दूषित नहीं है।

इसीलिए वे सम्बन्ध पवित्र और अलौकिक हैं। वे हैं ही दूसरे प्रकार के। जैसे जैसे हम आध्यात्मिक जीवनधारणा की ओर प्रगति करेंगे, हम समझ सकेंगे कि उस आध्यात्मिक दिव्य जगत में जीव की वास्तविक स्थिति क्या है।



यहाँ भगवान् हमें बुद्धियोग का निर्देश करते हैं। बुद्धियोग का अर्थ यह है कि हमें इस बात की पूर्ण जानकारी हो कि हम यह शरीर नहीं हैं और यदि इस बात को ठीक से समझ कर हम कर्म करें, तो वस्तुतः हम शरीर न रहकर केवल आत्मा रह जाते हैं। यह एक सत्य है। चेतना के स्तर पर कर्म करने से हम अपने अच्छे और बुरे सभी

कर्मों के फलों के प्रभाव से मुक्त हो सकते हैं। यह दिव्य स्थिति है।

इसका अर्थ यह हुआ कि हम किसी दूसरे के लिए अर्थात् भगवान् के लिए काम कर रहे हैं। इसलिए हम स्वयं किसी लाभ या हानि के लिए उत्तरदायी नहीं हैं। यदि लाभ होता है, तो हमें उसका अभिमान नहीं करना चाहिए। हमें सोचना चाहिए, "यह लाभ ईश्वर के लिए है।" और अगर हमें कोई नुकसान उठाना पड़े, तो हमें सोचना चाहिए कि इस नुकसान की जिम्मेदारी हमारी नहीं है। यह काम ईश्वर का है। तब हम सुखी रह सकते हैं। हमें इस प्रकार की समझ का अभ्यास करना चाहिए : हर काम ईश्वर का काम है। हमें इस प्रकार की दिव्य प्रकृति का विकास करना चाहिए। वर्तमान परिस्थितियों में कर्म करने की यही एक युक्ति है। ज्योंही हम शारीरिक चेतना के स्तर पर कर्म करने लगते हैं, त्योंही हम अपने कर्म के फल से बंधने लगते हैं, किन्तु जब हम आध्यात्मिक चेतना के माध्यम से कर्म करते हैं, तब हम न तो अपने अच्छे कर्मों से बंधते हैं और न ही बुरे कर्मों से। यही युक्ति है। *मनीषिण:*—यह शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। *मनीषी* का अर्थ है, विचारवान। वैचारिक या बुद्धिमान हुए बिना कोई भी व्यक्ति यह नहीं समझ सकता कि मैं यह शरीर नहीं हूँ। किन्तु यदि कोई थोड़ा सा विचारशील हो, तो वह समझ सकता है, "ओह! मैं यह शरीर नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ।"

कभी खाली समय में हम सोचते हैं कि, "ओह! यह मेरी अंगुली है, यह मेरा हाथ है। यह मेरा कान है, यह मेरी नाक है। सब कुछ मेरा है, पर मैं क्या हूँ? क्या हूँ मैं?" मैं अनुभव कर रहा हूँ कि यह मेरा है और मैं वह हूँ। इस बात को समझने के लिए बस थोड़ी सी सोच की आवश्यकता है। सब कुछ मेरा है—मेरी आँखें, मेरी अंगुली, मेरा हाथ। मेरा, मेरा, मेरा और यह मैं क्या हूँ? यह मैं ही

वह आत्मा हूँ जिसके कारण मैं यह सोच रहा हूँ कि यह मेरा है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब मैं यह शरीर नहीं हूँ, तो फिर मैं क्यों इस शरीर के लिए कर्म करूँ? मुझे अपने लिए कार्य करना चाहिए। लेकिन मैं अपने आप के लिए कार्य कैसे कर सकता हूँ? मेरी स्थिति क्या है? मैं चेतना हूँ, पर किस प्रकार की चेतना हूँ? अधीनस्थ चेतना। मैं परमात्मा का एक अंश हूँ। तब मेरे कर्म क्या होंगे?

इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि हमारे सभी कर्मों के मार्गदर्शक परमात्मा हैं, जैसे किसी कार्यालय में प्रबन्ध-निदेशक सर्वोच्च चेतना होता है। उदाहरण के लिए, कार्यालय में हर कार्यकर्ता प्रबन्धक के मार्गदर्शन में अपना काम करता है, इसलिए कार्यालय की जिम्मेदारियों से उसे कोई मतलब नहीं होता। उसे तो सिर्फ अपना निश्चित काम करना होता है, चाहे वह काम अच्छा हो या बुरा। सेना विभाग में भी सेनापति की आज्ञा सर्वोपरि होती है। सिपाही को तो उसकी आज्ञा का बस पालन करना होता है। वह यह नहीं सोचता कि वह आज्ञा अच्छी है या बुरी। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उसे तो बस कर्म करना है। ऐसा करने पर ही वह एक सच्चा सिपाही माना जाएगा। यदि वह इस प्रकार काम करता है, तो इसका पुरस्कार उसे मिलता है। उसे पद और सम्मान मिलता है। पर वह उसकी भी परवाह नहीं करता। सेनापति उससे कहता है कि जाओ और उस शत्रु को मार दो। वह ऐसा करता है और इसका पुरस्कार भी उसे मिलता है। क्या आप सोचते हैं कि सिपाही को यह पुरस्कार किसी व्यक्ति की जान लेने के लिए मिला? नहीं, पुरस्कार उसे अपने कर्तव्य पालन के लिए दिया गया।

ठीक इसी प्रकार भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को निर्देश दे रहे हैं। श्रीकृष्ण सर्वोपरि आत्मा (परमात्मा) हैं। मैं आत्मा

हूँ—उस परमात्मा का एक अंश। इसलिए मेरा कर्तव्य है कि मैं वैसा ही करूँ जैसा कि मुझे परमात्मा से आदेश मिलता है। उदाहरण के लिए मैं यह सोचता हूँ कि मेरा हाथ मेरे शरीर का एक भाग है। वह अपने ढंग से कार्य कर रहा है। जैसे मैं चाहूँ मेरे हाथों को, पैरों को और आँखों को काम करना चाहिए। इस प्रकार मैं अपने अंगों को आदेश देता हूँ और वे उसका पालन करते हैं। अतः जिस प्रकार हमारे अंग हमारे शरीर के भाग हैं, उसी प्रकार हम भी उस परमात्मा के अंश या भाग हैं। जब हम उस परमात्मा की इच्छा के अनुरूप कार्य करने के लिए अपने आपको प्रशिक्षित करेंगे, तब हम सब अच्छे और बुरे कर्मों से ऊपर उठ जाएँगे। यही सही तरीका है। अब इस विधि के पालन का नतीजा क्या होगा? नतीजा यह होगा कि हम जन्म और मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाएँगे। न और जन्म न और मृत्यु!

आधुनिक वैज्ञानिक तथा दार्शनिक जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि—इन चार चीजों के बारे में कुछ नहीं सोचते हैं। वे इनको अलग रख देते हैं, सोचते हैं, हमें वर्तमान को भोगना चाहिए और आनन्द उठाना चाहिए। परन्तु मानव-जीवन का उद्देश्य है जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि के बंधन से मुक्ति पाने का उपाय ढूँढना। यदि किसी सभ्यता ने इन चारों समस्याओं से मुक्त होने का हल नहीं ढूँढा है, तो वह मानव सभ्यता नहीं है। मानव सभ्यता का उद्देश्य है इन चारों समस्याओं के पूर्ण समाधान का मार्ग ढूँढना।

भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं : *कर्मजं बुद्धियुक्तः।* *कर्मजं* का अर्थ है, जहाँ क्रिया होगी वहाँ उसकी प्रतिक्रिया भी होगी। यदि कोई बुरा कर्म करेगा, तो उसकी बुरी प्रतिक्रिया भी होगी। किन्तु प्रतिक्रिया चाहे अच्छी हो या बुरी, आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो वह दुःख ही है। मान लीजिए कि अपने पूर्वजन्मों के अच्छे

कर्मों के कारण मुझे अच्छा जीवन, सुन्दर शरीर और उच्च शिक्षा मिली है। मेरे पास ये अच्छी चीजे भले ही हों पर इसका अर्थ यह तो नहीं हुआ कि मैं भौतिक दु:खों से मुक्त हो गया—जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि। चाहे मैं धनवान होऊँ, सुन्दर होऊँ, सुशिक्षित होऊँ, बड़े परिवार में जन्मा होऊँ, चाहे कुछ भी क्यों न होऊँ फिर भी मैं मृत्यु, जरा और व्याधि से बच नहीं सकता।

इसलिए हमें शुभ और अशुभ किसी भी प्रकार के कर्मों को कोई महत्त्व नहीं देना चाहिए। हमें केवल आध्यात्मिक कर्मों से ही सम्बन्ध रखना चाहिए। केवल वही हमें जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि से बचा सकते हैं। यही हमारे जीवन का उद्देश्य होना चाहिए। हमें अच्छी या बुरी किसी भी प्रकार की वस्तुओं की लालसा नहीं करनी चाहिए। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि कोई व्यक्ति किसी बीमारी से कष्ट पा रहा है, वह बिस्तर पर लेटा है और खाना-पीना, शौच-कर्म आदि कठिनाईपूर्वक कर रहा है और साथ में कड़वी दवाइयाँ खा रहा है। कमरे में अप्रिय गंध न फैले इसलिए नर्स को उसे साफ रखना पड़ता है। जब वह इस स्थिति में लेटा हुआ है, तभी उसके कुछ मित्र उससे मिलने आते हैं और उसके स्वास्थ्य के बारे में पूछते हैं। वह कहता है, "हाँ, मैं ठीक हूँ।" अब यह ठीक क्या है? बिस्तर में असुविधापूर्वक सोना, कड़वी दवाई खाना और हिलने डुलने में भी कठिनाई महसूस करना और इन सब असुविधाओं के बावजूद भी वह कहता है, मैं ठीक हूँ। इसी प्रकार हमारे जीवन की भौतिक स्थिति में हम भी यदि यही सोचते हैं कि मैं सुखी हूँ, तो यह हमारी मूर्खता है। इस भौतिक जीवन में कोई सुख नहीं है। यहाँ पर सुख प्राप्त करना असम्भव है। इस स्थिति में हम जानते ही नहीं कि सुख क्या है। इसलिए विशेष रूप से *मनीषिण:* अर्थात् विचारवान शब्द का

प्रयोग किया गया है।

हम कुछ बाहरी और बनावटी साधनों से सुख प्राप्त करना चाहते हैं पर ऐसा सुख कब तक रहेगा? यह सुख अधिक समय तक नहीं टिकेगा। हम वापस दु:ख की स्थिति में आ जाएँगे। मान लीजिए कि नशे से हम सुख का अनुभव करते है; तो वह हमारा असली सुख नहीं है। मान लीजिए कि मुझे क्लोरोफॉर्म सुँघाकर बेहोश कर दिया गया है, जिसके कारण मैं ऑपरेशन का दर्द महसूस नहीं कर रहा हूँ। पर इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि मेरा ऑपरेशन ही नहीं हो रहा है। यह सब बनावटी चीज है। वास्तविक सुख और वास्तविक जीवन भी विद्यमान है।

भगवद्‌गीता में जैसा कि भगवान् श्रीकृष्ण ने आदेश दिया है, विचारवान व्यक्ति अपने कर्मों के फल का त्याग कर देते हैं, क्योंकि वे आत्मज्ञान के स्तर पर आसीन होते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि के बन्धन का अन्त हो जाता है। यह अन्त को हम परमानन्द के भण्डार रसराज कृष्ण के साथ जूड़ने से पा सकते हैं। वास्तव में वहीं पर सच्ची खुशी है जो हमारा लक्ष्य है।*

सर्वोत्तम प्रियतम–श्रीकृष्ण

(भक्तिरसामृत सिन्धु से उद्धृत)



भक्ति का अर्थ है, भगवत् सेवा। हर सेवा में कोई न कोई ऐसा आकर्षण अवश्य होता है जो कि सेवा करने वाले व्यक्ति को क्रमशः आगे की ओर बढ़ाता है। इस संसार में हममें से हर एक व्यक्ति चिरस्थायी रूप से किसी न किसी प्रकार की सेवा में लगा रहता है और इस प्रकार के कार्य से जो सुख मिलता है उसकी प्राप्ति के लिए ही वह ऐसा कार्य करने को अधिक उत्साहित रहता है। अपनी पत्नी और बच्चों के प्रेम से बँधा एक गृहस्थ व्यक्ति दिन-रात काम करता है। एक समाजसेवी इसी कारण एक बड़े परिवार के लिए काम करता है और एक राष्ट्र-प्रेमी अपने देश और देशवासियों के लिए दिन-रात इसी कारण काम करता है।

वह शक्ति जो कि एक समाजसेवी, गृहस्थ और देश-प्रेमी को प्रेरित करती है, उसे *रस* कहते हैं, या एक प्रकार का रिश्ता जिसका स्वाद अति मधुर होता है। भक्ति-रस उस साधारण रस से भिन्न होता है, जो कि सांसारिक कर्मियों के द्वारा अनुभव किया जाता है।

सांसारिक कर्मी एक विशेष प्रकार का रस, जो इन्द्रिय-सुख कहलाता है, उसे प्राप्त करने के लिए दिन-रात कठिन परिश्रम करता है। किन्तु सांसारिक रस अधिक समय तक नहीं रहता; इसलिए सांसारिक कर्मी हमेशा अपने सुख-प्राप्ति के तरीके बदलते रहते हैं। एक व्यापारी पूरे सप्ताह काम करके भी संतुष्ट नहीं होता, इसलिए सप्ताह के अंत में वह अपने नियमित कार्यक्रम में परिवर्तन की कामना करता है और ऐसे स्थान पर जाता है जहाँ पहुँचकर वह अपने व्यापार से सम्बन्धित हर बात को भूलने का प्रयत्न करता है। तब, सप्ताहान्त व्यवसाय को भूलने में व्यतीत करने के बाद वह वापस अपनी स्थिति बदलता है और फिर से अपने व्यापार-व्यवसाय में जुट जाता है। भौतिक कार्य करने का अर्थ है, किसी पद को स्वीकार करना और फिर थोड़े समय के बाद उसे बदल लेना। स्वीकार और अस्वीकार की इस प्रवृत्ति को भोग-त्याग कहते हैं जिसका अर्थ है कभी इन्द्रिय सुख को स्वीकार करना और कभी उसे त्याग देना। कोई भी जीव पूरी तरह से न तो भोग में रत रह सकता है और न ही त्याग में। परिवर्तन का यह क्रम निरन्तर चलता रहता है, पर हम किसी भी स्थिति (भोग या त्याग की स्थिति) में खुश नहीं रह सकते क्योंकि हम वास्तव में अपनी शाश्वत वैधानिक स्थिति की दृष्टि से उस परमात्मा के अंश है।

इन्द्रिय सुख अधिक देर तक नहीं रहता; इसलिए इसे चपल सुख कहते हैं। उदाहरण के लिए एक साधारण गृहस्थ दिन-रात मेहनत

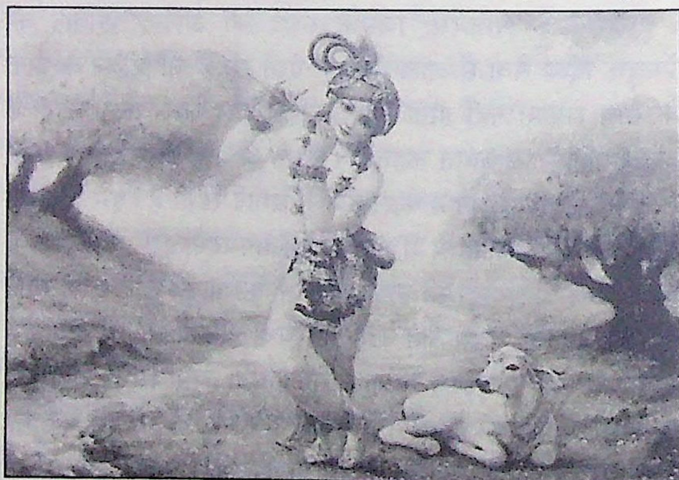
करके अपने परिवार के लोगों को आराम देने में सफल होता है और इस प्रकार वह एक प्रकार के रस का अनुभव करता है। किन्तु भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए की गई उसकी प्रगति अचानक उसके शरीर के साथ, जैसे ही उसके जीवन का अन्त हो जाता है, समाप्त हो जाती है। इसलिए मृत्यु नास्तिक श्रेणी के लोगों के लिए ईश्वर के प्रतिनिधि के समान है।

एक भक्त भगवान् के अस्तित्व को भक्ति के द्वारा अनुभव करता है, जब कि एक नास्तिक ईश्वर को मृत्यु के रूप में महसूस करता है। मृत्यु के साथ ही सब समाप्त हो जाता है और नई परिस्थिति में जीव को फिर से जीवन का एक नया अध्याय शुरू करना पड़ता है। और शायद यह जीवन पिछले जन्म से श्रेष्ठ या तो निम्न हो सकता है। राजनीतिक, सामाजिक, राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय—चाहे हम किसी भी कार्यक्षेत्र में क्यों न हों, पर हमारे कर्म के सब फल हमारे जीवन की समाप्ति के साथ ही समाप्त हो जायेंगे। यह निश्चित है।

बस एक भक्तिरस, जिसके स्वाद का आनन्द भगवान की प्रेमयुक्त दिव्य सेवा में आता है, वही ऐसा रस है जो जीवन के अन्त के साथ समाप्त नहीं होता। यह अनन्त काल तक चलता रहता है और इसलिए इसे अमृत कहते हैं। अमृत अर्थात् वह वस्तु जो कभी मरती नहीं बल्कि अनन्त काल तक विद्यमान रहती है। इस बात की पुष्टि सारे वैदिक साहित्य में की गई है। भगवद्गीता में कहा गया है कि भक्तिरस की थोड़ी सी उन्नति भी भक्त को मानव जीवनरूपी मौके को खो देने के सबसे बड़े खतरे से बचा सकती है। जो रस हम सामाजिक जीवन, गृहस्थ जीवन, परोपकारिता, समाजसेवा, राष्ट्रीयता, समाजवाद आदि की अनुभूतियों से प्राप्त करते हैं, वे हमें इस बात का कोई विश्वास नहीं दिलाते कि हमारा अगला जन्म मनुष्य योनि में ही

होगा। हम अपने अगले जीवन की तैयारी इस जन्म में ही अपने वास्तविक कर्मों के द्वारा कर लेते हैं। जीव को इस जन्म के कर्मों के फलस्वरूप ही अगले जन्म में विशिष्ट प्रकार का शरीर मिलता है।

जीव की मूल प्रवृत्ति यह होती है कि वह किसी को प्रेम करना चाहता है। कोई भी किसी दूसरे से स्नेह किए बिना नहीं रह सकता। प्रेम करने की यह प्रवृत्ति सभी जीवों में होती है। बाघ जैसे जानवर में भी यह प्रवृत्ति होती है चाहे वह सुप्त अवस्था में ही क्यों न हो और मनुष्य में तो यह प्रवृत्ति निश्चित रूप से होती है। पर कमी सिर्फ एक ही बात की है कि हमें यह नहीं मालूम कि हम अपने प्रेम का आधार किसे बनाएँ जिससे कि सब सुखी हो सकें। वर्तमान काल में मानव समाज हमें यही सिखाता है कि अपने देश को प्यार करो, या परिवार को प्यार करो या अपने आपको प्यार करो लेकिन वह इस बात की कोई जानकारी नहीं देता कि हम अपने प्रेम का आधार किसे बनाएँ जिससे हर व्यक्ति सुखी हो सकें। वह कड़ी है श्रीकृष्ण।



भक्तिमार्ग हमें सिखाता है कि हम किस प्रकार अपने मौलिक प्रेम को श्रीकृष्ण में बढ़ाएँ और कैसे उस स्थिति को प्राप्त करें जिससे हम परमानन्द के जीवन को भोग सकें।

जीवन के प्राथमिक चरण में बच्चा अपने माता-पिता की प्रेम करता है, फिर भाई-बहनों को और जैसे-जैसे प्रतिदिन वह बड़ा होता जाता है वह अपने परिवार, समाज, सम्प्रदाय, देश और पूरे मानव समाज को प्रेम करने लगता है। किन्तु प्रेम की भावना पूरे मानव समाज को प्रेम करने से भी संतुष्ट नहीं होती। प्रेम की यह भावना तब तक अपूर्ण रहती है जब तक कि हम यह नहीं जान लेते कि हमारा सर्वोच्च प्रियतम कौन है ? हमारा प्रेम पूर्णरूपेण तभी संतुष्ट हो सकता है जब कि उसका आधार श्रीकृष्ण हो। यह विषय कृष्णभावनामृत के विज्ञान का निष्कर्ष और आधार है जो हमें सिखाता है कि हम किस प्रकार भक्ति के पाँच अलौकिक रसों में कृष्ण को प्रेम कर सकते हैं।

जिस प्रकार प्रकाश की किरण और वायु की कम्पन बढ़ती जाती है, उसी प्रकार हमारे प्रेम करने की प्रवृत्ति भी विस्तृत होती जाती है, पर हमें यह नहीं मालूम कि इसका अंत कहाँ पर है ? भक्तियोग हमें सिखाता है कि सब जीवों को पूरी तरह प्रेम करने का सबसे आसान मार्ग यह है कि हम श्रीकृष्ण से प्रेम करें। संयुक्त राज्य संघ जैसी संस्थाएँ स्थापित करके भी हम मानव समाज में शांति और सद्भाव बनाए रखने में असफल हो गए हैं, क्योंकि हमें इसका सही तरीका मालूम नहीं है। तरीका बिल्कुल आसान है, पर उसे ठण्डे दिमाग से समझना होगा।

भक्तिरसामृत सिन्धु सबको भगवान् श्रीकृष्ण को प्रेम करने का सहज और सीधा तरीका सिखाता है। यदि हम श्रीकृष्ण से प्रेम करना

सीख जाएँ, तो हमारे लिए तुरन्त ही दूसरे सब जीवों को भी प्रेम करना सरल हो जाएगा। यह तरीका पेड़ की जड़ में पानी देने अथवा पेट को भोजन देने के समान है। पेड़ की जड़ को जल से सींचने या पेट को भोजन प्रदान करने का तरीका सामान्य रूप से वैज्ञानिक और व्यावहारिक है; जैसा हम सबने अनुभव किया है। इस बात को सब अच्छी तरह से जानते हैं कि जब हम कोई चीज अपने पेट तक पहुँचाते हैं या खाते हैं तो उससे जो शक्ति उत्पन्न होती है वह तुरन्त पूरे शरीर में बँट जाती है। इसी प्रकार जब हम पेड़ की जड़ को सींचते हैं, तो उससे जो शक्ति उत्पन्न होती है वह तुरन्त बड़े से बड़े पेड़ के भी सब भागों में वितरित हो जाती है। यह असंभव है कि हम पेड़ के भिन्न-भिन्न भागों को पानी से सीचें और न ही यह संभव है कि शरीर के विभिन्न भागों को हम अलग-अलग भोजन पहुँचाए। भक्तिरसामृत-सिन्धु पढ़ने से हमें ज्ञात होगा कि कैसे एक ही बटन दबाने से एकदम सर्वत्र, सब कुछ प्रकाशमय हो जाता है। जो व्यक्ति इससे परिचित नहीं है, वह अपने जीवन के मर्म से वंचित है।

जहाँ तक भौतिक आवश्यकताओं का प्रश्न है, वर्तमान समाज ने जीवन को सुविधामय बनाने के लिए काफी उन्नति कर ली है, किन्तु फिर भी हम सुखी नहीं हैं क्योंकि हम जीवन के मर्म को नहीं समझ रहे हैं। केवल भौतिक सुख हमारे जीवन को सुखी बनाने के लिए पर्याप्त नहीं है। इसका जीता जागता उदाहरण विश्व का सबसे सम्पन्न देश अमेरिका है। सारी भौतिक सुविधाओं के बावजूद भी वहाँ ऐसे व्यक्तियों की श्रेणी पैदा हो रही है जो जीवन से पूर्णतः निराश और भ्रमित हैं। यहाँ मैं उन भ्रमित लोगों से यह अनुरोध करता हूँ कि वे भक्ति की कला सीखें जो कि भक्तिरसामृत-सिन्धु में विस्तारपूर्वक बताई गई है और मुझे पूरा विश्वास है कि ऐसा करने से उनके हृदय

में दहक रही सांसारिक अग्नि तुरन्त शान्त हो जाएगी।

हमारे असंतोष का मूल कारण यह है कि भौतिक जीवन में इतनी प्रगति करने के बावजूद भी हमारी प्रेम करने की सुप्त प्रवृत्ति संतुष्ट नहीं हुई है। यह अलौकिक भक्ति-विज्ञान हमें इस बात का व्यावहारिक ज्ञान देगा कि हम किस प्रकार भगवान् की भक्तिमय सेवा करके इस भौतिक संसार में रहते हुए अपनी इच्छाओं को इस जन्म में तथा अगले जन्म में भी पूरा कर सकते हैं। इस ज्ञान का उद्देश्य भौतिक जीवन के तौर-तरीकों का विरोध या निन्दा करना नहीं है, बल्कि धर्मावलंबियों, दार्शनिकों और साधारण लोगों को इस बात की जानकारी देना है कि हम श्रीकृष्ण को कैसे प्रेम करें। कोइ व्यक्ति भौतिक असुविधा से मुक्त होकर भी रह सकता है, लेकिन उसके साथ ही उसे कृष्ण को प्रेम करने की कला सीखनी चाहिए।

हमारी प्रेम करने की प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिए आजकल हम कई नए-नए तरीकों की खोज कर रहे हैं, लेकिन सत्य यह है कि हम सबसे महत्त्व की बात को—कृष्ण को भूल रहे हैं। हम पेड़ की जड़ों को छोड़ कर बाकी सभी भागों को पानी दे रहे हैं। हम बाहरी तौर पर अपने शरीर की पूरी सुरक्षा और देखभाल कर रहे हैं, लेकिन हम पेट को भोजन नहीं दे रहे हैं।

श्रीकृष्ण को भूल जाने का अर्थ है अपने आपको भी भूल जाना। वास्तविक आत्म-साक्षात्कार और कृष्ण का साक्षात्कार दोनों साथ-साथ चलते हैं। उदाहरण के लिए प्रातःकाल अपने को देखने का अर्थ है सूर्योदय को भी देखना; क्योंकि सूर्य के प्रकाश के बिना कोई स्वयं को नहीं देख सकता। इसी प्रकार यदि हमने श्रीकृष्ण को नहीं जाना है, तो अपने आपको जानने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुने, जो कि स्वयं श्रीकृष्ण थे,

आज से ५०४ साल पूर्व बंगाल में अवतार लिया और इस युग में भगवान् का शुद्ध प्रेम प्राप्त करने का तरीका बताया। उन्होंने कहा कि दिव्य महामंत्र—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

के निरन्तर जप और श्रवण मात्र से मनुष्य अपने जीवन के इच्छित उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है।



हम सब व्यक्तियों को चाहे वह किसी स्थान, किसी भी मत या जीवन के किसी भी स्तर के हों, आमंत्रित करते हैं कि वे आएँ और हमारे साथ मिलकर इस हरे कृष्ण महामंत्र का जप करें तथा स्वयं इसकी दिव्य शक्ति को महसूस करें। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह किसी भी धर्म का मानने वाला हो, यदि वह ईश्वरीय अनुभूति के इस कृष्णभावनामृत के मार्ग को स्वीकार कर लेता है, तो उसमें भगवान् के प्रति प्रेम उत्पन्न होगा और इस तरह उसका जीवन परिपूर्ण बनेगा।*

पूर्ण पुरुष–श्रीकृष्ण



कृष्णभावनामृत एक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन है जिसका उद्देश्य सभी जीवों को उनकी वास्तविक चेतना की ओर लाना है। जिस प्रकार यहाँ पर *बेल-व्यू* जैसे कई ऐसे मानसिक रोगियों के अस्पताल

हैं, जिनका उद्देश्य पागल व्यक्ति को वापस उनकी वास्तविक चेतना में ले आना है, उसी प्रकार कृष्णभावनामृत आन्दोलन का उद्देश्य भी सब पागल व्यक्तियों को उनकी वास्तविक चेतना तक ले आना है।

अगर कोई व्यक्ति कृष्णभावनामय नहीं है, तो उसे थोड़ा-बहुत पागल ही समझना चाहिए। भारत में कुछ समय पूर्व हत्या की एक दुर्घटना घटित हुई जिसमें हत्यारे ने अपनी सफाई देते हुए कहा कि हत्या करते समय वह पागल हो गया था और इसलिए उसे यह मालूम नहीं हुआ कि उसने क्या कर दिया। अत: यह देखने के लिए कि हत्या करते समय वह वास्तव में पागल हो गया था या नहीं, एक दक्ष मनोवैज्ञानिक को उसके परीक्षण के लिए बुलाया गया। परीक्षण के बाद डॉक्टरने अपनी राय देते हुए कहा कि उसने अनेक रोगियों की जाँच की थी और जितने भी रोगियों के सम्पर्क में वह आया, वे सब थोड़े-बहुत पागल थे। इसलिए यदि अदालत चाहे तो इस आधार पर उस अपराधी को माफ कर सकती है।

एक बंगला कविता में एक महान् वैष्णव कवि ने लिखा है, "जब कोई व्यक्ति भूत-प्रेतों के प्रभाव में होता है, तो वह बकवास करता है। इसी प्रकार जो भौतिक प्रकृति के प्रभाव में होता है, वह भी मानो भूतों के ही वश में है और इसलिए वह जो कुछ बोलता है, वह निरर्थक होता है।" यद्यपि कोई व्यक्ति बड़ा दार्शनिक या महान् वैज्ञानिक है, लेकिन अगर वह माया रूपी चुड़ैल से प्रभावित है, तो वह चाहे जो सिद्धान्त प्रतिपादित करे, चाहे जो कहे, उसे किसी सीमा तक निरर्थक ही माना जाएगा।

इस आन्दोलन का उद्देश्य ऐसे भटके हुए व्यक्ति को उसकी वास्तविक चेतना से वापस जोड़ना या परिचित कराना है, और वह निर्मल चेतना है श्रीकृष्णाभावनामृत। जब बादलों से पानी बरसने

लगता है, तो उस समय वह दूषण रहित शुद्ध जल होता है। पर जैसे ही वह पृथ्वी का स्पर्श करता है, तो वह मटमैला हो जाता है। इस प्रकार हम सब भी दिव्य आत्मा हैं, श्रीकृष्ण के अंश हैं। इसलिए हमारी वास्तविक वैधानिक स्थिति भी उतनी ही पवित्र है जितनी कि स्वयं भगवान् की।

भगवद्गीता(१५.७) में कहा गया है *ममैवांशो जीवलोके*— सब प्राणी श्रीकृष्ण के अंश हैं। जिस प्रकार सोने का टुकड़ा सोना होता है, उसी प्रकार हम भी भगवान् के शरीर के छोटे छोटे हिस्से हैं और इसलिए गुण में ईश्वर ही के समान हैं। भगवान् के शरीर की और हमारे शरीर की (भौतिक नहीं, आध्यात्मिक शरीर की) रासायनिक संरचना एक ही प्रकार की है। इसलिए हमारा शरीर भी भगवान् के शरीर के ही समान है क्योंकि रासायनिक सरंचना एकसी है। लेकिन बरसाती पानी जिस प्रकार जमीन पर गिरता है, उसी प्रकार हम भी इस भौतिक संसार के और भौतिक प्रकृति के संपर्क में आते हैं, जो कि कृष्ण की भौतिक शक्ति से ही संचालित है।

जब हम प्रकृति की बात करते हैं, तो सहज प्रश्न उठता है कि किसकी प्रकृति? ईश्वर की प्रकृति। प्रकृति स्वतंत्र रूप से कोई कार्य नहीं करती है। यह सोचना कि प्रकृति स्वतंत्र है, मूर्खता है। भगवद्गीता में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भौतिक प्रकृति स्वतंत्र नहीं है। एक मशीन को काम करते देखकर मूर्ख व्यक्ति सोचता है कि वह अपने आप काम कर रही है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है, बल्कि एक चालक होता है जो उसे चला रहा है, यद्यपि कभी-कभी ऐसा होता है कि हम अपनी दूषित दृष्टि के कारण उसे देख नहीं सकते। आजकल अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य करने वाली इलेक्ट्रोनिक मशीनें भी बन गई हैं, लेकिन उन मशीनों के पीछे भी

एक वैज्ञानिक होता है जो उन्हें बटन दबाकर चलायमान करता है। इस बात को समझना बड़ा आसान है। क्योंकि मशीन पदार्थ है और कोई भी पदार्थ स्वतः संचालित नहीं होता, उसे किसी न किसी चेतन निर्देश और संचालन की आवश्यकता होती है। एक टेप रिकॉर्डर चलता है पर उसे चलाने वाला मनुष्य है जो कि जीवित प्राणी है। मशीन अपने आप में पूर्ण है, पर जब तक कोई चेतन आत्मा उसे नहीं चलायेगा वह नहीं चलेगी। इसीलिए हमें इस बात को विश्वासपूर्वक मान लेना चाहिए कि प्रकृति का यह विराट-स्वरूप एक बड़ी मशीन है किन्तु इसे चलाने वाला या इसका संचालन करने वाला ईश्वर अर्थात् कृष्ण है।

भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं : *मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्* अर्थात् सारी भौतिक प्रकृति मेरे निर्देश और मेरी इच्छा के अनुसार काम कर रही है (*भगवद्गीता* ९.१०)। इस संसार में दो प्रकार के जीव होते हैं—चल (जैसे मनुष्य, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े आदि) और अचल (जैसे पेड़ और पर्वत)। श्रीकृष्ण कहते हैं कि भौतिक प्रकृति जो कि इन दोनों प्रकार के तत्त्वों का नियंत्रण करती है, उनके (श्रीकृष्ण के) निर्देश के अनुसार काम करती है। एक सर्वोपरि सत्ता है जो सबको नियंत्रित रखती है।

सही ज्ञान के अभाव के कारण आधुनिक समाज या सभ्यता इस बात को नहीं समझ सकते हैं, इसलिए हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन इस बात को लोगों को समझाने का प्रयत्न कर रहा है। क्योंकि मनुष्य प्रकृति के सत्त्व, रज और तमो गुणों से प्रभावित होकर कार्य करते हैं, इसलिए वे पागल जैसे हैं। वे अपनी सहज स्वाभाविक अवस्था में नहीं हैं।

विश्व में और विशेषकर अमरीका में अनेक विश्वविद्यालय हैं और

विभिन्न शैक्षणिक विभाग हैं, लेकिन वहाँ पर इस बात की चर्चा क्यों नहीं की जाती? इस ज्ञान को प्राप्त करने का विभाग कहाँ पर है?



सन् १९६८ में जब मैं बॉस्टन गया और मुझे वहाँ पर मेसेच्युसेट्स तकनीकी संस्थान में भाषण देने के लिए आमंत्रित किया गया। वहाँ पहुँचकर मैंने पहला सवाल यह किया था कि, "वह तकनीकी विभाग कहाँ पर है, जो जीवित और मृत व्यक्ति के बीच

के अन्तर की खोज कर रहा है?" जब एक व्यक्ति मर जाता है, तो इसका अर्थ है कि कोई चीज चली गई है। अब कौन सी ऐसी तकनीक है जो उस चीज को वापस ला सकती है? वैज्ञानिक इस बात का प्रयत्न क्यों नहीं करते हैं? वे ऐसा प्रयत्न इसलिए नहीं करते हैं कि यह बहुत कठिन विषय है, इसलिए वे इसे एक ओर रख देते हैं। वे खाने, सोने, आत्मसुरक्षा और यौन-तुष्टि की तकनीक में बड़ी व्यस्ततापूर्वक जुटे हुए हैं। पर यह तकनीक तो पाशविक तकनीक है। पशु भी अच्छी तरह से खाने का, सोने का, आत्मसुरक्षा करने का और यौन सुख भोगने का प्रयत्न करते हैं।

तो मनुष्य के ज्ञान में और पशु के ज्ञान में क्या अन्तर है? मनुष्य की बुद्धिमत्ता इसी में है कि वह ऐसी तकनीक की खोज करे जो कि जीवित और मृत मनुष्य के अन्तर को स्पष्ट कर सके। भगवद्गीता के आरम्भ में ही भगवान् श्रीकृष्ण ने यह आध्यात्मिक ज्ञान सिखाया था। अर्जुन भगवान् से एक मित्र की तरह बात कर रहा था। यद्यपि श्रीकृष्ण से उसने जो कुछ भी कहा वह सही था, पर वह एक सीमा तक ही सही था। उस सीमा के बाद ज्ञान के और भी विषय हैं जिन्हें अधोक्षज कहते हैं, क्योंकि हमारे भौतिक ज्ञान की सीधी अनुभूति उन तक नहीं पहुँच सकती या उन्हें नहीं समझ सकती। जिन चीजों को हम अपनी सीमित दृष्टि से नहीं देख सकते उनको देखने के लिए हमारे पास अनेक शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शक यंत्र हैं, लेकिन ऐसा कोई सूक्ष्मदर्शक यंत्र नहीं है जो हमें शरीर के भीतर आत्मा को दिखा सके, परन्तु आत्मा तो विद्यमान है ही।

भगवद्गीता हमें सूचित करती है कि इस शरीर के अन्दर ही एक स्वामी है। मैं अपने शरीर का स्वामी हूँ और दूसरे अपने शरीरों के। मैं कहता हूँ "मेरा हाथ" यह नहीं कहता "मैं हाथ।" इसलिए

चूँकि यह मेरा हाथ है, मैं इस हाथ से भिन्न हूँ। जब मैं कहता हूँ, "मेरी पुस्तक" तो इस से यह सूचित होता है कि पुस्तक मुझसे भिन्न है। इसी प्रकार, यह "मेरी मेज़" "मेरी आँखें, "मेरा पैर," "मेरा यह," "मेरा वह," है, किन्तु मैं कहाँ पर हूँ? इस प्रश्न का उत्तर ढूँढना ध्यान है। कोई पूछता है, "मैं कहाँ हूँ? मैं क्या हूँ?" पर इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर हम भौतिक प्रयत्नों के द्वारा नहीं दे सकते। इसीलिए सभी महाविद्यालय इस प्रश्न को यह कह कर अलग रख देते हैं कि, "यह बहुत कठिन विषय है।"

इंजिनियर्स को इस बात का बहुत अभिमान है कि उन्होंने बिना घोड़े की गाड़ी का निर्माण कर लिया है। पहले समय में गाड़ियों को घोड़े खेंचते थे, किन्तु अब कारें बन गई हैं और वैज्ञानिक इसके लिए अत्यन्त गर्व करते हैं। वे कहते हैं, "हमने बिना घोड़े की गाड़ियाँ और बिना पंखों के पक्षी का आविष्कार कर लिया है।" वे हवाई जहाज के लिए बनावटी पंखों का आविष्कार कर सकते हैं पर जिस दिन वे बिना आत्मा के शरीर का आविष्कार करेंगे, उसी दिन वे सच्ची प्रशंसा या श्रेय के भागीदार होंगे। इस प्रकार का आविष्कार कभी हो ही नहीं सकता क्योंकि कोई भी मशीन आत्मा की अनुपस्थिति में काम नहीं कर सकती। कम्प्यूटरों को चलाने के लिए भी एक प्रशिक्षित व्यक्ति की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार हमें यह समझ लेना चाहिए कि यह महान् भौतिक ब्रह्मांडरूपी मशीन भी परमात्मा के द्वारा ही संचालित है। और वह हैं श्रीकृष्ण। आधुनिक वैज्ञानिक उस परम कारण अथवा उस अन्तिम नियंता की खोज में हैं जो कि इस भौतिक प्रकृति का संचालन कर रहे हैं। वे हर रोज नए-नए सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं, पर हमारे ज्ञान का साधन बिल्कुल पूर्ण और आसान है क्योंकि हम इस ज्ञान को पूर्ण पुरुष श्रीकृष्ण से सुन रहे

हैं। श्रीकृष्ण कहते हैं इसलिए हम यह तुरन्त समझ जाते हैं कि यह ब्रह्मांडरूपी यंत्र जिसका यह पृथ्वी एक भाग है, इसलिए इतनी अच्छी व आश्चर्यजनक तरह से कार्य कर रहा है क्योंकि इसको चलाने वाले हैं श्रीकृष्ण। जिस प्रकार किसी भी यंत्र के पीछे एक चालक होता है उसी प्रकार भौतिक प्रकृति के इस महान् यंत्र के चालक हैं श्रीकृष्ण।

ज्ञान-प्राप्ति की हमारी प्रक्रिया बहुत आसान है। भगवद्गीता ही हमारे ज्ञान का स्रोत है जिसे पूर्ण-पुरुष श्रीकृष्ण ने दिया था। कुछ लोग इस बात पर विवाद कर सकते हैं कि यद्यपि हमने श्रीकृष्ण को पूर्ण-पुरुष के रूप में स्वीकार कर लिया है, पर दूसरे लोग तो इसे स्वीकार नहीं करते, किन्तु वे पूर्ण-पुरुष हैं क्योंकि इस बात को कई प्रामाणिक शास्त्र और आचार्य मानते आये हैं। यह हमारी सनक नहीं है कि हम श्रीकृष्ण को परिपूर्ण मानते हैं। नहीं, ऐसे कई वैदिक अधिकारी हैं, जैसे श्रीव्यासदेव, जिन्होंने समस्त वैदिक साहित्य की रचना की है, जो इस बात को स्वीकार करते हैं। ज्ञान का सारा खजाना वेदों में समाहित है और उनके लेखक, श्रीव्यासदेव श्रीकृष्ण को भगवान् स्वीकार करते हैं। उनके गुरु नारद और नारद के गुरु ब्रह्मा तक श्रीकृष्ण को भगवान् स्वीकार करते हैं। ब्रह्माजी कहते हैं— *ईश्वरः परमः कृष्णः* अर्थात् श्रीकृष्ण ही सर्वोच्च नियंता है।

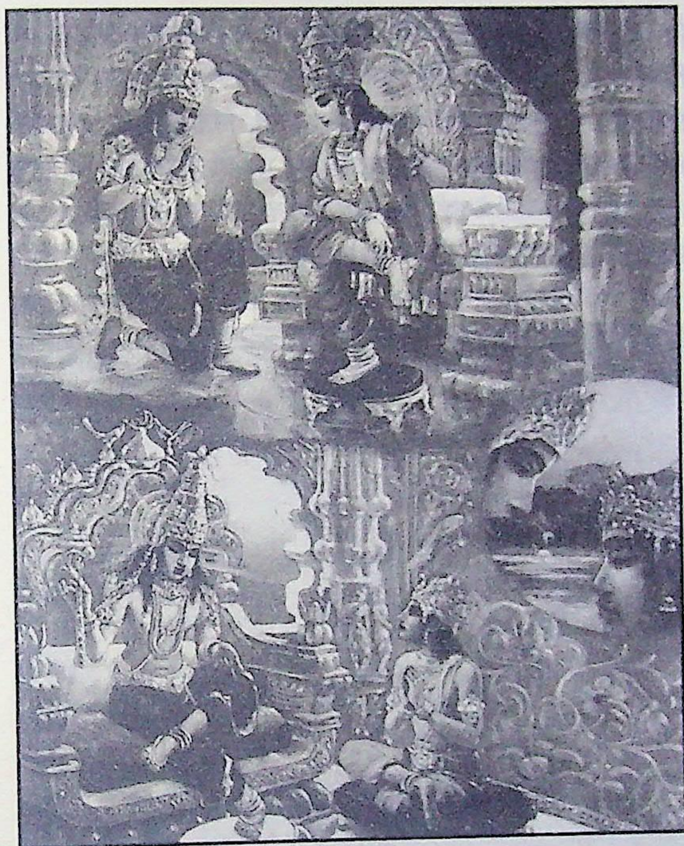
कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि उसका कोई नियंता नहीं है। यह संभव ही नहीं है। हर व्यक्ति, चाहे वह कितना बड़ा अधिकारी क्यों न हो, उसे नियंत्रित करने वाला भी कोई न कोई होता है। पर श्रीकृष्ण का नियंता कोई नहीं है, इसलिए वे भगवान् हैं। वे सबके नियंता है किन्तु उनका नियंता कोई नहीं है। आजकल बहुत से तथाकथित भगवान् पैदा हो गये हैं। भगवान् आजकल बहुत सस्ते हो गये हैं। विशेषतया से भारत से ही उन का आयात हो रहा है।

दूसरे देशों के लोग भाग्यशाली हैं क्योंकि वहाँ पर भगवानों का निर्माण नहीं होता। पर भारत में करीब-करीब हर दिन एक नये भगवान् का निर्माण होता है। मेरे एक शिष्य ने अभी हाल ही में मुझे बताया कि एक भगवान् भारत से लॉस एंजलिस आ रहे हैं और लोगों से वहाँ पर प्रार्थना की गई है कि वे उनका स्वागत करें। श्रीकृष्ण इस तरह के भगवान् नहीं हैं। मैंने अपनी पुस्तक *लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण* में बताया है कि श्रीकृष्ण ऐसे भगवान् नहीं हैं जिनका निर्माण किसी योग की फैक्ट्री में हुआ है। नहीं। वे भगवान् हैं। उन्हें भगवान् बनाया नहीं गया है, लेकिन वे पहले से ही भगवान हैं।



इस विशाल भौतिक प्रकृति के प्राकट्य के पीछे ईश्वर का हाथ है—श्रीकृष्ण का हाथ है और उसे सभी अधिकारियों ने स्वीकार किया है। हमें उस ज्ञान को स्वीकार करना चाहिए जिसे हमारे महान् अधिकारियों और आचार्यों ने स्वीकार किया है। शिक्षा-प्राप्ति के लिए हम गुरु के पास जाते हैं अथवा स्कूल जाते हैं अथवा माता-पिता से ज्ञान ग्रहण करते हैं। वे सब हमारे लिए अधिकारी हैं तथा हमारी यही प्रकृति है कि हम उनसे सीखें। बचपन में हम पूछा करते थे, "पिताजी, यह क्या है ?" पिताजी उत्तर देते थे, "यह मेज है, यह कलम है। यह चश्मा है" इस तरह बच्चा अपने माता-पिता से सीखता है—"यह मेज़ है, यह चश्मा है, यह कलम है, यह मेरी बहन है, यह मेरा भाई है, आदि आदि।" इसी प्रकार यदि हम किसी अधिकारी से कोई जानकारी प्राप्त करते हैं और वह अधिकारी धोखेबाज नहीं है, तो उससे प्राप्त हमारी जानकारी सही है। जब एक पुत्र माता-पिता से कुछ पूछता है तो वे उसे कभी नहीं छलते बल्कि उसे बिल्कुल सही जानकारी देते हैं। यदि सही व्यक्ति से हमें सही जानकारी मिले, तो वही सच्चा ज्ञान है। लेकिन हम अगर केवल अंदाज लगाकर किसी नतीजे पर पहुँचना चाहते हैं, तो वह ज्ञान अपूर्ण है। यह प्रक्रिया कभी पूर्ण नहीं होगी; यह सदैव अपूर्ण रहेगी।

क्योंकि हमने अपनी जानकारी पूर्ण-पुरुष श्रीकृष्ण से प्राप्त की है, इसलिए हम जो कुछ बोलते हैं वह परिपूर्ण है, सही है। मैं कोई ऐसी बात नहीं कहता हूँ जिसे श्रीकृष्ण ने अथवा उन्हें स्वीकार करने वाले अधिकारीयों (आचार्यों) ने न कही हो। इसी को शिष्य-परम्परा कहते हैं। यही कृष्णभावनामृत है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ज्ञान-प्राप्ति की इसी प्रक्रिया की संस्तुति करते है (*एवं परंपराप्राप्तम् इमं राजर्षयो विदुः*) (भगवद्गीता ४.२)। प्राचीन काल से ज्ञान उन महान्



राजर्षियों द्वारा परंपरा के रूप से चला आ रहा है, जो कि इस विषय के अधिकारी थे। आजकल सरकार या राष्ट्रपति ही अन्तिम प्रामाणिक अधिकारी है। पहले वे अधिकारी या राजा लोग ऋषि थे, जो महान् विद्वान तथा भक्त थे, साधारण व्यक्ति नहीं थे। राज-काज का वह तरीका बहुत अच्छा था। एक गुणवान और प्रशिक्षित व्यक्ति राज्य के कार्य को शान्तिपूर्वक चला सकता था।

वैदिक सभ्यताओं में हमें राजाओं की संपूर्णता के इस प्रकार के कितने ही उदाहरण मिलते हैं। ध्रुव महाराज का उदाहरण उनमें से एक है। ध्रुव महाराज ने भगवान् को प्राप्त करने के लिए जंगल में जाकर कठोर तपस्या की और केवल छः महीनों में भगवान् को प्राप्त कर लिया। कैसे? उनकी उम्र केवल पाँच वर्ष की थी और वे एक राजा के पुत्र थे और उनका शरीर बहुत कोमल था पर अपने गुरु नारद के निर्देश के अनुसार वे अकेले ही जंगल में चले गए। पहले



एक महीने में तो उन्होंने तीन दिन में एक बार फल तथा सब्जियाँ ही खाईं। फिर अगले तीन महीनों तक वे हर छठे दिन थोड़ा सा पानी पीते रहे। फिर अगले महीने हर बारहवें दिन वे केवल थोड़ी सी सांस लेते थे। पूरे छः महीने तक वे एक पैर पर खड़े रहे और घोर तप करते रहे। छः महीने के बाद भगवान् साक्षात् उनके समक्ष प्रकट हो गए। यदि हम भी संयम रखकर तपस्या करेंगे, तो एक दिन हमारे सम्मुख भी भगवान् साक्षात् प्रकट हो जायेंगे। यही जीवन की पूर्णता है।



कृष्णभावनामृत आन्दोलन तप पर आधारित है, पर यह कठिन नहीं है। हम अपने अनुयायीयों को अनैतिक यौन-सम्बन्ध रखने के लिए मना करते हैं। हम यौन-सम्बन्ध को समाप्त नहीं करते बल्कि उसे नियमित करते हैं। हम खाना बंद नहीं करते बल्कि उसे नियमित करते हैं। हम कृष्ण-प्रसाद (कृष्ण को पहले अर्पित किया गया भोजन) ग्रहण करते हैं। हम यह नहीं कहते कि खाना मत खाओ किन्तु हम कहते हैं कि मांस मत खाओ। इसमें क्या कठिनाई है? कृष्ण-प्रसाद कई प्रकार की अच्छी तरह पकाई गई सब्जियों और फलों से मिलकर बनता है; अतः इसमें कोई कठिनाई नहीं है। अनैतिक यौन-संबंधों की मनाही का अर्थ है कि कुत्ते-बिल्लियों के समान व्यवहार मत करो—विवाह करके एक ही पुरुष अथवा स्त्री से संतुष्ट रहो। हमें अपने आपको नियमित करना चाहिए और तपस्या करनी चाहिए, यद्यपि जैसा तप ध्रुव महाराज ने किया वैसा तप करना हमारे लिए असंभव है। आज के समय में यह संभव नहीं है कि हम ध्रुव महाराज की नकल करें, परन्तु जो तरीके हम बताते हैं उनका पालन संभव है। जो कोई इन नियमों का पालन करेगा, वह कृष्णभावनामृत में आध्यात्मिक प्रगति कर सकेगा। जैसे-जैसे एक व्यक्ति कृष्णभावनामृत में प्रगति करता चलता है, वैसे-वैसे उसका ज्ञान भी पूर्ण होता रहता है। एक ऐसा वैज्ञानिक या दार्शनिक बनने का क्या लाभ है जो कि यह भी नहीं बता सकता है कि उसका अगला जन्म क्या होगा? कृष्णभावनामृत के ये अनुयायी बड़ी आसानी से बता सकते हैं कि उनका अगला जीवन क्या होगा, भगवान् क्या है? हम क्या हैं? और भगवान् के साथ हमारा सम्बन्ध क्या है? इनका ज्ञान सम्पूर्ण है क्योंकि ये ज्ञान की सही किताबें, जैसे भगवद्गीता और श्रीमद्भागवतम् पढ़ रहे हैं।

यह हमारा तरीका है। यह बहुत आसान है, कोई भी व्यक्ति इसे स्वीकार करके अपने जीवन को सफल बना सकता है। यदि कोई यह कहे कि मैं शिक्षित नहीं हूँ, और पुस्तकें नहीं पढ़ सकता हूँ तो उसके लिए भी ऐसी संभावना है जिससे वह अपने जीवन को सफल बना सके। वह केवल भगवान् के नाम हरे कृष्ण का जप कर सकता है। श्रीकृष्ण ने हमें एक जिह्वा और दो कान दिए हैं और हमें यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि श्रीकृष्ण को आँखों के द्वारा नहीं बल्कि जिह्वा के द्वारा जाने जाते हैं। जिह्वा के बाद दूसरी इन्द्रियों का क्रम आता है पर सब इन्द्रियों में जिह्वा प्रमुख है। हमें चाहिए कि हम अपनी जिह्वा को नियंत्रित करें। अब प्रश्न उठता है, इसे नियंत्रित कैसे करें? केवल हरे कृष्ण का जप करने और कृष्ण-प्रसाद ग्रहण करने से यह जिह्वा नियंत्रित हो सकती है।

कोई भी व्यक्ति श्रीकृष्ण को इन्द्रिय बोध अथवा कोरे तर्क के द्वारा नहीं जान सकता। यह संभव नहीं है क्योंकि श्रीकृष्ण इतने महान् हैं कि वे हमारी भौतिक इन्द्रियों की परिधी से परे हैं। लेकिन उन्हें समर्पण के द्वारा समझा जा सकता है। इसीलिए श्रीकृष्ण हमें इस विधि के पालन की सलाह देते हैं—*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज* (भगवद्गीता १८.६६) अर्थात् धर्म की सब विधियों को छोड़कर केवल मुझे समर्पित हो जाओ। हमारी बीमारी यह है कि हम विद्रोही हैं। हम किसी को अधिकारी मानने के लिए तैयार नहीं हैं। फिर भी प्रकृति इतनी शक्तिशाली है कि वह किसी न किसी अधिकारी को हमारे ऊपर थोप ही देती है। हमें अपनी इन्द्रियों के माध्यम से प्रकृति के आधिपत्य को स्वीकार करना ही पड़ता है। यह कहना कि हम आत्म-निर्भर हैं, व्यर्थ है, यह हमारी मूर्खता है। हम किसी के अधीन हैं और फिर भी हम कहते हैं कि हमें किसी का

आधिपत्य नहीं चाहिए। इसी को माया कहते हैं। हालाँकि हममें थोड़ी सी स्वतंत्रता अवश्य है कि हम यह चुन सके कि हम अपनी इन्द्रियों का आधिपत्य स्वीकार करें या श्रीकृष्ण का।

किन्तु सबसे बड़े और परम अधिपति तो श्रीकृष्ण ही हैं क्योंकि वे हमारे शाश्वत शुभचिन्तक हैं और वे हमेशा हमारे हित की ही बात कहते हैं। जब हमें किसी का आधिपत्य स्वीकार करना ही है, तो क्यों न कृष्ण को ही अपना अधिपति बनाएँ? केवल भगवद्गीता और श्रीमद्भागवतम् में से उनकी महिमाएँ सुनकर और उनके नाम—हरे कृष्ण—का जप करके हम बड़ी तेजी से अपने जीवन को संपूर्ण बना सकते हैं।✲



लेखक-परिचय

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद ६९ वर्ष की अवस्था में सन १९६५ में अपने गुरु महाराज के आदेशानुसार अंग्रेजी भाषी विश्व में कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के लिए अमरीका गये। बारह वर्षों की अल्प अवधि में उन्होंने वैदिक साहित्य के अंग्रेजी अनुवाद और भाष्य के रूप में ५० से अधिक ग्रंथरत्न प्रस्तुत किये। उनके द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित वैदिक ग्रंथ उनकी अधिकृतता, गहराई व स्पष्टता के कारण विद्वत्समाज में सम्मानप्राप्त तथा विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों के उच्चस्तरीय पाठ्यक्रमों में मान्यताप्राप्त हैं। इसके साथ साथ ही कृष्णभावनामृत का प्रचार करने हेतु वे सम्पूर्ण विश्व में निरन्तर भ्रमण करते रहे। सन १९६६ में उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना न्यूयॉर्क में की। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ को अपने कुशल निर्देशन से सौ से अधिक मन्दिरों, आश्रमों, गुरुकुलों एवं कृषि-समुदायों का एक बृहद् संगठन बना दिया। सन् १९७७ में उन्होंने कृष्ण की प्रिय एवं पावन लीलाभूमि वृन्दावन में लौट कर इस धरा-धाम से प्रयाण किया। उनके शिष्यगण उनके द्वारा स्थापित आन्दोलन को आगे बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील हैं।✲

प्रत्येक मनुष्य आनन्द की खोज कर रहा है, किन्तु कृष्ण के सम्बन्ध में जो आनन्द मिलता है, उसकी तुलना में अन्य सब फीका हो जाता है। यदि हम केवल कृष्ण की ओर मुडें, तो हम जो भी आनन्द के लिए लालायित हैं, उसे आखिर प्राप्त करेंगे। कृष्ण के चित्ताकर्षक व्यक्तित्व एवं उनकी लीलाओं के विषय में जानें और आनन्द के अपार भण्डार को प्राप्त करें।

ISBN 978-93-82716-51-8



